वर्ष : ३५
अंक : ०८

तित्थयर

मूल्य ५०.०० रुपये
नवम्बर २०११

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित ---

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

Suvigya & Saurabh Boyed

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३५ | अंक - ८ नवम्बर | २०११

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय

पता - **Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007**

Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,

Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --

Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00

Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
१. कर्म		२५७
२. मुगलकाल में जैन धर्म एवं आचार्य	नीना जैन	२६६
३. कुवलय माला		२७८

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

कर्म

बन्धाधिकार :

तह थुणिमो वीरजिणं जह गुणठाणेसु सयलकंमाइं।
बन्धुदओदीरणयासत्तापत्ताणि स्ववियाणि ।। 1।।
(तथा स्तुमो वीरजिनं यथा गुणस्थानेषु सकलकर्माणि।
बन्धोदयोदीरणासत्ताप्राप्तानि क्षपितानि ।। 1।।

अर्थ– गुणस्थानों में बन्ध को, उदय को, उदीरणा को और सत्ता को प्राप्त हुए सभी कर्मों का क्षय जिस प्रकार भगवान वीर ने किया, उसी प्रकार से उस परमात्मा की स्तुति हम करते हैं।

भावार्थ– असाधारण और वास्तविक गुणों का कथन ही स्तुति कहलाती है। सकल कर्मों का नाश यह भगवान का असाधारण और यथार्थ गुण है, इससे उस गुण का कथन करना यही स्तुति है।

मिथ्यात्वआदि निमित्तों से ज्ञानावरणआदि रूप में परिणत होकर कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ दूध पानी के समान मिल जाना, उसे 'बंध' कहते हैं।

उदय काल आने पर कर्मों के शुभाशुभ फल का भोगना, "उदय" कहलाता है।

अबाधा काल व्यतीत हो चुकने पर जिस समय कर्म के फल का अनुभव होता है, उस समय को 'उदयकाल' समझना चाहिए।

बन्धे हुए कर्म से जितने समय तक आत्मा को अबाधा नहीं होती- अर्थात् शुभाशुभ फल का वेदन नहीं होता उतने समय को 'अबाधा काल' समझना चाहिए।

सभी कर्मों का अबाधा काल अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार जुदा होता है। कभी तो वह अबाधा काल स्वाभाविक क्रम से ही व्यतीत होता है, और कभी अपवर्तनाकरण से जल्द पूरा हो जाता है।

जिस वीर्यविशेष से पहले बँधे हुए कर्म की स्थिति तथा रस घट जाते हैं उसको, "अप वर्तनाकरण" समझना चाहिए।

अबाधा काल व्यतीत हो चुकने पर भी जो कर्मदलिक पीछे से उदय में आने वाले होते हैं, उनको प्रयत्नविशेष से खींचकर उदय प्राप्त दलिकों के साथ भोग लेना उसे "उदीरणा" कहते हैं।

बँधे हुए कर्म का अपने स्वरूप को न छोड़कर आत्मा के साथ लगा रहना "सत्ता" कहलाती है।

(बद्ध-कर्म, निर्जरा से और संक्रमण से अपने स्वरूप को छोड़ देता है।)

बँधे हुए कर्मका तप ध्यान आदि साधनों के द्वारा आत्मा से अलग हो जाना "निर्जरा" कहलाती हैं।

जिस वीर्य विशेष से कर्म, एक स्वरूप को छोड़ दुसरे सजातीय स्वरूप को प्राप्तकर लेता है, उस वीर्य विशेष का नाम संक्रमण करता है। इस तरह एक कर्म प्रकृति का दूसरी सजातीयकर्मप्रकृतिरूप बन जाना भी संक्रमण कहाता है। जैसे मतिज्ञानावरणीय कर्म का श्रुतज्ञानावरणीय कर्मरूप में बदल जाना या श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का मतिज्ञानावरणीय कर्म रूप में बदल जाना। क्योंकि ये दोनों प्रकृतिय्राँ ज्ञानावरणीय कर्म का भेद होने से आपस में सजातीय हैं।)

प्रत्येक गुणस्थान में जितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, जितनी कर्म प्रकृतियों का उदय हो सकता है, जितनी कर्म प्रकृतियों की उदीरणा की जा सकती है और जितनी कर्म प्रकृतियाँ सत्तागत हो सकती हैं; उनका क्रमशः वर्णन करना, यही ग्रन्थकार का उद्देश्य है। इस उद्देश्य को ग्रन्थकार ने भगवान् महावीर की स्तुति के बहाने से इस ग्रन्थ में पूरा किया है।।1।।

पहले गुण स्थानों को दिखाते हैं

मिच्छे मासण मीसे अविरय देसे पमत्त अपमत्ते।
नियट्टि अनियट्टि सुहुम वसम खीण सजोगि अजोगिगुणा ।।2।।

(मिथ्यात्वसास्वादनमिश्रमविरतदेशे प्रमत्ताप्रमत्तम्।
निवृत्यनिवृतिसूक्ष्मोपशम क्षीणसयोग्यऽयोगिगुणा ।।2।।

अर्थ— गुणस्थान के 14 (चौदह) भेद हैं। जैसे– (1) मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, (2) सास्वादन (सासादन) सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (3) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान, (4) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (5) देशविरत गुणस्थान, (6) प्रमत्तसंयत गुणस्थान, (7) अप्रमत्तसंयत गुणस्थान (8) निवृत्ति (अपूर्वकरण), गुणस्थान (9) अनिवृत्तिबादर सम्पराय गुणस्थान (10) सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान, (11) उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान, (12) क्षीणकषाय वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान, (13) सयोगि केवलि गुणस्थान और (14) अयोगि केवलि गुणस्थान।

भावार्थ— जीव के स्वरूपविशेषों को (भिन्न-भिन्न स्वरूप को) गुणस्थान कहते हैं। ये स्वरूपविशेष ज्ञान दर्शन चारित्र आदि गुणों की शुद्धि तथा अशुद्धि के तरतम-भाव से होते हैं। जिस वक्त अपना भावरणभूत कर्म कम हो जाता है, उस वक्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों की शुद्धि अधिक प्रकट होती है। और जिस वक्त आवरणभूत कर्म की अधिकता हो जाती है, उस वक्त उक्त गुणों की शुद्धि कम हो जाती है, और अशुद्धि तथा अशुद्धि से होनेवाले जीव के स्वरूप विशेष असंख्य प्रकार के होते हैं, तथापि उन सब स्वरूप विशेषों का संक्षेप चौदह गुणस्थानों के रूप में कर दिया गया है। चौदहों गुणस्थान मोक्षरूप महल को प्राप्त करने के लिये सीढ़ियों के समान हैं। पूर्व-पूर्व गुणस्थान की अपेक्षा उत्तर- उत्तर गुणस्थान में ज्ञान आदि गुणों की शुद्धि बढ़ती जाती है, और अशुद्धि घटती जाती है। अतएव आगे-आगे के गुणस्थानों में अशुभ प्रकृतियों की अपेक्षा शुभ प्रकृतियाँ अधिक बाँधी जाती हैं, और शुभ प्रकृतियों का बंध भी क्रमशः रुकता जाता है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान— मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म के उदय से जिन जीव की दृष्टि (श्रद्धा या प्रतिपत्ति) मिथ्या (उलटी) हो जाती है, वह जीव मिथ्यादृष्टि कहलाता है—जैसे धतूरे के बीज को खाने वाला

मनुष्य सफेद चीज को भी पीली देखता और मानता है। इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव भी जिसमें देव के लक्षण नहीं हैं उसको देव मानता है, तथा जिसमें गुरु के लक्षण नहीं उसपर गुरु-बुद्धि रखता है और जो धर्मों के लक्षणों से रहित है उसे धर्म समझता है। इस प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीवका स्वरूप विशेष ही 'मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान' कहाता है।

प्रश्न— मिथ्यात्वी जीव के स्वरूप-विशेष को गुणस्थान कैसे कह सकते हैं? क्योंकि जब उसकी दृष्टि मिथ्या (अयथार्थ) है तब उसका स्वरूप-विशेष भी विकृत—अर्थात् दोषात्मक हो जाता है।

उत्तर— यद्यपि मिथ्यात्वी की दृष्टि सर्वथा यथार्थ नहीं होती, तथापि वह किसी अंश में यथार्थ भी होती है। क्योंकि मिथ्यात्वी जीव भी मनुष्य, पशु, पक्षी-आदि को मनुष्य, पशु, पक्षी आदि रूप से जानता तथा मानता है। इस लिये उसके स्वरूपविशेष को गुणस्थान कहा है। जिस प्रकार सघन बादलों का आवरण होने पर भी सूर्य की प्रभा सर्वथा नहीं छिपती, किन्तु कुछ न कुछ खुली रहती ही है जिससे कि दिनरात का विभाग किया जा सके। इसी प्रकार मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का प्रबल उदय होने पर भी जीव का दृष्टि-गुण सर्वथा आवृत नहीं होता। अतएव किसी न किसी अंश में मिथ्यात्वी की दृष्टि भी यथार्थ होती है।

प्रश्न– जब मिथ्यात्वी की दृष्टि किसी भी अंश में यथार्थ हो सकती है, तब उसे सम्यग्दृष्टि कहने और मानने में क्या बाधा है?

उत्तर– एक अंश मात्र की यथार्थ प्रतीति होने से जीव सम्यग्दृष्टि नहीं कहाता, क्योंकि शास्त्र में ऐसा कहा गया है कि जो जीव सर्वज्ञ के कहे हुए बारह अंगों पर श्रद्धा रखता है परन्तु उन अंगों के किसी भी एक अक्षर पर विश्वास नहीं करता, वह भी मिथ्यादृष्टि ही है। जैसे जमालि। मिथ्यात्व की अपेक्षा सम्यक्त्वि-जीव में विशेषता यही है कि सर्वज्ञ के कथन के ऊपर सम्यक्त्वी का विश्वास अखंडित रहता है, और मिथ्यात्वी का नहीं।।1।।

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान– जो जीव औपशमिक सम्यक्त्वी है, परन्तु अनन्तानुबंधि कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोड़ मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है, वह जीव जब तक मिथ्यात्व को नहीं पाता तब तक-अर्थात् जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छः आवलिका पर्यन्त सासादन सम्यग्दृष्टि कहाता है और उस जीव का स्वरूप–विशेष "सासादन सम्यग्दृष्टि–गुणस्थान" कहाता है।

इस गुणस्थान के समय यद्यपि जीव का झुकाव मिथ्यात्व की ओर होता है, तथापि जिस प्रकार खीर खाकर उसका वमन करने वाले मनुष्य को खीर का विलक्षण स्वाद अनुभव में आता है, इसी प्रकार सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व की ओर झुके हुए उस जीव को भी, कुछ काल के लिये सम्यक्त्व गुण का आस्वाद अनुभव में आता है। अतएव इस गुण स्थान को "सास्वादन सम्यग्दृष्टिगुणस्थान" भी कहते हैं।

प्रसंगवश इसी जगह औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति का क्रम लिख दिया जाता है।।

जीव अनादि काल से संसार में घूम रहा है, और तरह-तरह के दुःखों को पाता है। जिस प्रकार पर्वत की नदी का पत्थर इधर-उधर टकराकर गोल और चिकना बन जाता है, इसी प्रकार जीव भी अनेक दुःख सहते कोमल और शुद्ध परिणामी बन जाता है। परिणाम इतना शुद्ध हो जाता है कि जिसके बल से जीव आयु को छोड़ शेष सात कर्मों की स्थिति को पल्योपमा संख्यात भाग न्यून कोटा कोटी सागरोपम प्रमाण कर देता है। इसी परिणाम का नाम शास्त्र में यथाप्रवृत्ति करण है। यथाप्रवृत्ति करण से जीव रागद्वेष की एक ऐसी मजबूत गाँठ, जोकि कर्कश, दृढ़ और गूढ़ जीभ की गांठ के समान दुर्भेद है वहां तक आता है, परन्तु उस गांठ को भेद नहीं सकता, इसी को ग्रन्थदेश की प्राप्ति कहते हैं। यथाप्रवृत्ति करण से अभव्य जीव भी ग्रन्थिदेश की प्राप्ति कर सकते हैं— अर्थात् कर्मों की बहुत बड़ी स्थिति को घटाकर अन्तः कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण कर सकते हैं, परन्तु वे रागद्वेष की दुर्भेद

ग्रन्थि को तोड़ नहीं सकते। और भव्य जीव यथाप्रवृत्ति करण नामक परिणाम से भी विशेष शुद्ध—परिणाम को पा सकता है। तथा उसके द्वारा राग द्वेष की दृढ़तम ग्रन्थि की अर्थात् राग-द्वेष के अति दृढ़ संस्कारों को छिन्न-भिन्न कर सकता है। भव्य जीव जिस परिणाम से रागद्वेष की दुर्भेद ग्रन्थि को लांघ जाता है उस परिणाम को शास्त्र में 'अपूर्वकरण' कहते हैं। 'अपूर्वकरण' नाम रखने का मतलब यह है कि इस प्रकार का परिणाम कदाचित् ही होता है, बार-बार नहीं होता। अतएव वह परिणाम अपूर्वसा है। इसके विपरीत 'यथाप्रवृत्ति करण' नामक परिणाम तो अभव्य जीवों को भी अनन्त बार आता है। अपूर्वकरण-परिणाम से जब राग द्वेष की ग्रन्थि टूट जाती है, तब तो और भी अधिक शुद्ध परिणाम होता है। इस अधिक शुद्ध परिणाम को अनिवृत्तिकरण कहते हैं। इसे अनिवृत्तिकरण कहने का अभिप्राय यह है कि इस परिणाम के बल से जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर ही लेता है। सम्यक्त्व को प्राप्त किये विना वह निवृत्त नहीं होता– अर्थात् पीछे नहीं हटता। इस अनिवृत्तिकरण नामक परिणाम के समय वीर्य समुल्लास-अर्थात् सामर्थ्य भी पूर्व की अपेक्षा बढ़ जाता है। अनिवृत्तिकरण की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त-प्रमाण मानी जाती है। अनिवृत्ति करण की अन्तर्मुहूर्ति प्रमाण स्थिति में से जब कई एक भाग व्यतीत हो जाते हैं, और एक भाग मात्र शेष रह जाता है, तब अन्तःकरण की क्रिया शुद्ध होती है। अनिवृत्तिकरण की अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण स्थिति का अन्तिम एक भाग–जिसमें अन्तःकरण की क्रिया प्रारम्भ होती है—वह भी अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही होता है। अन्तर्मुहूर्त्त के असंख्यात भेद हैं, इस लिये यह स्पष्ट है कि अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्त्त की अपेक्षा उसके अन्तिम भाग का अन्तर्मुहूर्त्त जिसको अन्तरकरण क्रिया-काल कहना चाहिये–वह छोटा होता है। अनिवृत्तिकरण के अन्तिम भाग में अन्तःकरण की क्रिया होती है इसका मतलब यह है कि अभी जो मिथ्यात्व मोहनीय कर्म उदयमान है, उसके उन दलिकों को जो कि अनिवृत्तिकरण के बाद अन्तर्मुहूर्त्त तक उदय में

आनेवाले हैं, आगे पीछे कर लेना अर्थात् अनिवृत्तिकरण के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण काल में मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के जितने दलिक उदय में आने वाले हों, उनमें से कुछ दलिकों को अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समय पर्यन्त उदय में आने वाले दलिकों में स्थापित किया जाता है। और कुछ दलिकों को उस अन्तर्मुहूर्ति के बाद उदय में आने वाले दलिकों के साथ मिला दिया जाता है। इससे अनिवृत्तिकरण के बाद का एक अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण काल ऐसा हो जाता है कि जिसमें मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का दलिक रहता ही नहीं। अतएव जिसका अबाधा काल पूरा हो चुका है, ऐसे मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के दो भाग हो जाते हैं। एक भाग तो वह जो अनिवृत्तिकरण के चरम समय पर्यन्त उदयमान रहता है, और दूसरा भाग वह जो अनिवृत्तिकरण के बाद, एक अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण काल व्यतीत हो चुकने पर उदय में आता है। इन दो भागों में से पहले भाग को मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति और दूसरे भाग को द्वितीयस्थिति कहते हैं। जिस समय में अन्तरकरण क्रिया शुरू होती है अर्थात् निरन्तर उदययोग्य दलिकों का व्यवधान किया जाता है, उस समय से अनिवृत्तिकरण के चरम समय पर्यन्त उल्क दो भागों में से प्रथम भाग का उदय रहता है। अनिवृत्तिकरण का अन्तिम समय व्यतीत हो जाने पर मिथ्यात्व का किसी भी प्रकार का उदय नहीं रहता। क्योंकि उस वक्त जिन दलिकों के उदय का सम्भव है, वे सब दलिक, अन्तःकरण क्रिया से आगे और पीछे उदय में आने योग्य कर दिये जाते हैं। अनिवृत्तिकरण के चरम समय पर्यन्त मिथ्यात्व का उदय रहता है, इस लिये उस वक्त तक जीव मिथ्यात्वी कहलाता है। परन्तु अनिवृत्तिकरण काल व्यतीत हो चुकने पर जीवको औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। क्योंकि उस समय मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का विपाक और प्रदेश दोनों प्रकार से उदय नहीं होता। इस लिये जीव का स्वाभाविक सम्यक्त्व गुण व्यक्त होता है और औपशमिक सम्यक्त्व कहाता है। औपशमिक सम्यक्त्व उतने काल तक रहता है जितने

कालतक के उदय योग्य दलिक आगे पीछे कर लिये जाते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त वेदनीय दलिकों को आगे पीछे कर दिया जाता है इससे यह भी सिद्ध है कि औपशमिक सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त रहता है। इस औपशमिक सम्यक्त्व के प्राप्त होते ही जीव को पदार्थों की स्फुट या असंदिग्ध प्रतीति होती है, जैसे कि जन्मान्ध मनुष्य को नेत्रलाभ होने पर होती है। तथा औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होते ही मिथ्यात्व रूप महान् रोग हट जाने से जीव को ऐसा अपूर्व आनन्द अनुभव में आता है जैसा कि किसी वीमार को अच्छी औषधि के सेवन से बीमारी के हट जाने पर अनुभव में आता है। इस औपशमिक सम्यक्त्व के काल को उपशान्ताद्धा तथा अन्तरकरण काल कहते हैं। प्रथम स्थिति के चरम समय में अर्थात् उपशान्ताद्धा के पूर्व समय में, जीव विशुद्ध परिणाम से उस मिथ्यात्व के तीन पुँज करता है जो कि उपशान्ताद्धा के पूरा हो जाने के बाद उदय में आने वाला है। जिस प्रकार कोद्रव धान्य (कोदो नामक धान्य) औषधि विशेष से साफ किया जाता है, तब उसका एक भाग इतना शुद्ध हो जाता है जिससे कि खाने वाले को नशा नहीं होता कुछ भाग शुद्ध होता है परन्तु बिल्कुल शुद्ध नहीं होता, अर्द्ध शुद्ध सा रह जाता है। और कोद्रव का कुछ भाग तो अशुद्ध ही रह जाता है जिससे कि खाने वाले को नशा हो आता है। इसी प्रकार द्वितीय स्थितिगत-मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के तीन पुञ्जों (भागों) में से एक पुंज तो इतना विशुद्ध हो जाता है, कि उसमें सम्यक्त्वघातकरस (सम्यक्त्वनाशकशक्ति) का अभाव हो जाता है। दूसरा पुञ्ज आधाशुद्ध (शुद्धाशुद्ध) हो जाता है और तीसरा पुञ्ज तो अशुद्ध ही रह जाता है। उपशास्ताद्धा पूर्ण हो जाने के बाद उक्त तीन पुँजों में से कोई एक पुंज जीव के परिणामानुसार उदय में आता है। यदि जीव विशुद्धपरिणामी ही रहा तो शुद्धपुंज उदयगत होता है। शुद्धपुंज के उदय होने से सम्यक्त्व का घात तो होता नहीं इससे उस समय जो सम्यक्त्व प्रकट होता है वह क्षायोपशमिक कहलाता है। यदि

जीव का परिणाम न तो बिल्कुल शुद्ध रहा और न बिलकुल अशुद्ध, किन्तु मिश्र ही रहा तो अर्धविशुद्ध पुंज का उदय हो आता है। और यदि परिणाम अशुद्ध ही हो गया तब तो अशुद्ध पुंज उदयगत हो जाता है, अशुद्ध पुंज के उदयप्राप्त होने से जीव, फिर मिथ्यादृष्टि बन जाता है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपशान्त श्रद्धा, जिसमें जीव शान्त, प्रशान्त, स्थिर और पूर्णानन्द हो जाता है, उसका जघन्य एक समय या उत्कृष्ट छः (6) आवलिकायें जब बाकी रह जाती है, तब किसी किसी औपशमिक सम्यक्तिवी जीव को विघ्न आ पड़ता है अर्थात् उसकी शान्ति में भंग पड़ता है क्योंकि उस समय अनंतानुबंधि कषाय का उदय हो आता है। अनन्तानुबंधि कषाय का उदय होते ही जीव सम्यक्त्व परिणाम का त्यागकर मिथ्यात्व की ओर झुक जाता है। और जब तक वह मिथ्यात्व को नहीं पाता तब तक अर्थात् उपशान्त श्रद्धा के जघन्य एक समय पर्यन्त अथवा उत्कृष्ट छः आवलिका पर्यन्त सासादन भाव का अनुभव करता है। इसी से उस समय वह जीव सासादन सम्यग्दृष्टि कहाता है। जिसको औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है, वहीं सासादन सम्यग्दृष्टि हो सकता है, दूसरा नहीं ।।2।।

क्रमशः

अकबर का जैन आचार्यों एवं मुनियों से सम्पर्क तथा उनका प्रभाव

नीना जैन

इसी समय अवसर पाकर सूरिजी ने बादशाह को पर्यूषणों के आठ दिनों में सारे राज्य में जीव हिंसा बन्द करने का फरमान निकालने का उपदेश दिया। सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने अपने कल्याण के लिए उनमें चार दिन और जोड़कर (भादवा वदी दसमी से भादवा सुदी छठ तक) बारह दिन के लिए फरमान लिख दिया। इस फरमान की छः नकलें इन जगहों पर भेजा गया।

1. गुजरात और सौराष्ट्र
2. दिल्ली, फतेहपुर सिकरी आदि
3. अजमेर, नागौर आदि
4. मालवा और दक्षिण देश
5. लाहौर और मुल्तान
6. सूरिजी को सौपी गई[1]

हीरविजय सूरिरास और जगद्गुरु हीर में भी इसका वर्णन मिलता है[2] फरमान देते हुए अकबर ने सूरिजी से कहा कि मेरे अनुचर मांसाहार और मद्यपान के प्रेमी हैं, उन्हें जीव हत्या बन्द करने की बात एकदम से रुचिकर नहीं लगेगी। इसलिए मैं धीरे-धीरे बन्द कराने की कोशिश करूँगा। पहले की तरह मैं भी शिकार नहीं करूँगा और ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा कि प्राणीमात्र को किसी तरह की तकलीफ न हो।

---

1. सूरिश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा पेज 128
2. हीरविजयसूरिरास पेज 128, जगद्गुरुहीर पृष्ठ 83-84

सूरिजी के विवेक पर बादशाह इतना मुग्ध हुआ कि उसने सोचा कि ये तो जैन गुरु न होकर जगत्‌गुरु है अतः उसने सारी प्रजा के समक्ष गुरुदेव को जगद्‌गुरु की पदवी दे दी। इस समय बादशाह ने महान उत्सव मनाया।

एक दिन बीरबल के हृदय में सूरिजी की ज्ञान शक्ति मापने की इच्छा हुई। बादशाह की अनुमति लेकर उसने सूरिजी से पूछा कि क्या शंकर सगुण हैं? सूरिजी ने जबाव दिया– हाँ शंकर तो सगुण हैं। बीरबल ने कहा मैं तो शंकर को निर्गुण मानता हूँ। इस पर सूरिजी ने पूछा क्या तुम शंकर को ईश्वर मानते हो? बीरबल द्वारा ज्ञानी बताये जाने पर सूरिजी ने फिर प्रश्न किया कि ज्ञानी का मतलब क्या है? बीरबल ने बताया ज्ञानी का मतलब ज्ञान वाला है। सूरिजी ने कहा ज्ञान को गुण बताते हो? बीरबल ने कहा ज्ञान को तो मैं गुण ही मानता हूँ। तो सूरिजी ने कहा जब तुम ज्ञान को गुण मानते हो तो तुम्हारी मान्यतानुसार ही यह सिद्ध हो जाता है कि ईश्वर **सगुण** है।

जगद्‌गुरू श्रीमद् विजयहीर सूरिजी महाराज ने अकबर के आग्रह से सम्वत् 1640 (सन् 1583) का चातुर्मास फतेहपुर सीकरी में ही किया। धर्मोपदेश द्वारा जनता को सचेत किया। सूरिजी के उपदेश से पर्यूषण पर्व आने पर बादशाह ने सारे राज्य में अहिंसा फैलाने की घोषणा कर दी। इससे जैन धर्म की करुणा का प्रवाह सब दिशाओं में फैल गया। चातुर्मास के बाद अकबर के आग्रह से उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी को वहीं छोड़कर सूरिजी विहार करके आगरा होते हुए मथुरा के प्राचीन जैन स्तूपों की यात्रा करते हुए ग्वालियर पहुँचे। नाथूराम प्रेमी ने हीरविजय सूरिजी के बारे में लिखा है कि **मुगल बादशाह अकबर के समय हीरविजयसूरि नाम के एक सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हुए हैं। अकबर उन्हें गुरुवत् मानता था। संस्कृत और गुजराती में उनके सम्बन्ध में बीसों ग्रन्थ लिखे गये हैं इन ग्रन्थों में लिखा है कि हीरविजयजी ने मथुरा से लौटते हुए गोपाचल (ग्वालियर) की बावनगजी भव्याकृति मूर्ति**

के दर्शन किये और यह मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदाय की है, इसमें कोई संदेह नहीं। इससे मालूम होता है कि बादशाह अकबर के समय तक भी दोनों सम्प्रदायों में मूर्ति सम्बन्धी विरोध तीव्र नहीं था। उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्य भी नग्न मूर्तियों के दर्शन किया करते थे।[1]

सम्वत् 1641 (सन् 1584) का चातुर्मास अभिरामाबाद करने के बाद भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए गाँव-गाँव घूमते हुए सूरिजी पुनः आगरा आये। श्री संघ के आग्रह पर सम्वत् 1642 (सन् 1585) का चातुर्मास आगरा में ही किया। बादशाह आगरा में जगद्गुरु के दर्शन करने गया वहां जनता की बढ़ती हुई सद्भावना देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ। इसी समय सूरिजी ने बादशाह से **जजिया** कर बन्द करने का अनुरोध किया। यद्यपि अकबर ने गद्दी पर बैठने के नौ वर्ष बाद ही अपने राज्य में **जजिया** कर लेना बन्द कर तिया था लेकिन अभी गुजरात में यह कर लिया जाता था क्योंकि गुजरात उस समय अकबर के अधिकार में नहीं था। हीरसौभाग्यकाव्य की टीका से भी यह बात सिद्ध होती है। इसी पुस्तक के 14वें सर्ग के 271 वें श्लोक की टीका में लिखा है कि **जेजियाकाख्यो गौर्जरकर विशेषः**[2] अर्थात् गुजरात का विशेषकर जजिया।

इससे यह सिद्ध होता है कि सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने जजिया बन्द करने का जो फरमान दिया, वह गुजरात के लिए था। जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में भी शत्रुंजय व गिरनार में **जजिया** तीर्थयात्री कर बन्द करने का उल्लेख है।[3]

जब गुजरात के पवित्र बड़े-बड़े तीर्थ स्थानों की रक्षा के लिए सूरिजी ने बादशाह से अनुनय किया तो इस बारे में जगद्गुरु हीर के लेखक लिखते हैं कि **"इस प्रकार जगद्गुरु के दयामय वचन सुनकर तुरन्त ही बादशाह ने अपने फरमान में गुजरात के शत्रुंजय, पावापुरी,**

1. जैन साहित्य और इतिहास–नाथूराम प्रेमी पृष्ठ 246
2. हीरसौभाग्य काव्य–पण्डित देवविमलगणि सर्ग 14, श्लोक 271
3. जैन इतिहास गुर्जर काव्य संचय–श्री जैनआत्मानन्द सभा भावनगर पृष्ठ 201

गिरनार, सम्मेतशिखर और केसरियाजी आदि जो जैन सम्प्रदाय के पवित्र तीर्थ हैं उनमें से किसी तीर्थ पर कोई भी मनुष्य अपनी दखल गिरी न करे और कोई जानबूझकर किसी जानवर पर भी हिंसा न करे।" ये सब तीर्थ स्थान जगद्गुरु श्रीमद् विजयहीर सूरिजी महाराज को सौंपे गये हैं। ऐसा फरमान अकबर ने लिखकर सूरिजी के कर कमलों में सादर सविनय समर्पण कर दिया।[1]

इस तरह सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने अपने व जगत के कल्याणार्थ अनेक कार्य किये। बादशाह जो पाँच-पाँच सौ चिड़ियों की जीभे नित्य प्रति खाता था। सूरिजी के उपदेश से मांसाहार से नफरत करने लगा। मेड़ता के रास्ते पर बादशाह ने जो हजीरे बनवाये थे, हरेक हजीरे पर हरिणों के पाँच पाँच सो सींग लगवाये थे बादशाह के शब्दों में-

देखे हजीरे हमारे तुम्ह, एक सौ चऊद कीए वें हम्म।

अकेके सिंग पंच से पंच पातिगं करता नहीं खलखंच।।[2]

बदायूंनी ने भी लिखा हैं **प्रतिवर्ष बादशाह अपनी अत्यन्त भक्ति के क़ारण उस नगर (अजमेर) जाता था और इसीलिए उसने आगरे और अजमेर के बीच में स्थान-स्थान पर जहाँ-जहाँ मुकाम होते थे महल और एक-एक कोस की दूरी पर एक कुंआ और एक स्तम्भ (हजीरा) बनवाया था।**[3]

इस हिसाब से भी अकबर द्वारा हजीरे बनवाने का ऋषभदास का कथन सत्य प्रतीत होता है। इस तरह शिकार करके अनेक जीवों को मारने वाले बादशाह ने सूरिजी के वचनामृत से पाप कार्य करने छोड़ दिये।

इतना ही नहीं, बादशाह ने चित्तौड़ की लड़ाई में जो घोर नरसंहार किया उसका पश्चाताप करते हुए कहा कि **"मैंने ऐसे पाप**

---

1. जगद्गुरु हीर मुमुक्षु भव्यानन्दजी पृष्ठ 89
2. हीरविजय सूरिरास पण्डित ऋषभदास पृष्ठ 131
3. अलबदायू नी डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनूदित भाग 2 पृष्ठ 176

किये हैं ऐसे आज तक किसी ने नहीं किये होंगे[1] जब मैंने चित्तौड़गढ़ जीत लिया उस समय राणा के मनुष्य, हाथी, घोड़े मारे थे इतना ही नहीं चित्तौड़ के एक कुत्ते को भी नहीं छोड़ा था ऐसे पाप से मैंने बहुत से किले जीते हैं लेकिन अब मैं भविष्य में इस तरह के दुष्कार्य न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।"

सूरिजी ने जो उद्देश्य लेकर गन्धार से विहार किया था, उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली अतः अब उन्होंने विहार करने का निश्चय किया वैसे भी साधुओं को ज्यादा समय तक एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए क्योंकि एक कवि ने कहा है—

बहता पानी, निर्मला बन्धा सो गन्दा होय।
साधू तो रमता भला, दाग न लागे कोय।।
हीरविजय सूरिरास में ऋषभदास ने भी लिखा है—
स्त्री पीहर, नरसासरे, संयमियां थिरवास।
ऐ त्रणये अलखामणा, जो मन्डे थिरवास।।[1]

अतः सूरिजी ने बादशाह के सामने बिहार करने की इच्छा प्रकट की बादशाह ने धर्मोपदेश के लिए सूरिजी को और समय देने का आग्रह किया लेकिन सूरिजी के दृढ़ निश्चय के सामने बादशाह को उन्हें गुजरात की ओर विहार करने की अनुमति देनी ही पड़ी। बादशाह ने सूरिजी से अन्तिम अर्ज किया कि समय-समय पर मेरे योग्य सेवा कार्य फरमाते रहें और आप जैसे गुरुदेव का भी फर्ज है कि मेरे जैसे अधम सेवक को न भूलें।

आचार्य हीरविजयसूरिजी अपने कार्यों द्वारा भारतीय इतिहास में अमर है। उनका जीवन स्फटिक जैसा उज्जवल और उनका त्याग, तप, अखण्ड, ब्रह्मचर्य, पांडित्य सूर्य की किरणों जैसा जाज्वल्यमान हैं उन्होंने अकबर को ही नहीं अपितु गुजरात, काठियावाढ़ तथा राजस्थान के अन्य राजाओं को भी ओजस्वी वाणी द्वारा बहुत प्रभावित किया।

---

1. हीरविजय सूरिरास-पण्डित ऋषभदास पृष्ठ 141

2. उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी—

सम्वत् 1642 (सन् 1585) का चातुर्मास पूर्ण होते ही आचार्य हीरविजयसूरि गुजरात की ओर विहार कर गये लेकिन बादशाह के आग्रह पर अपने विद्वान शिष्य शान्तिचन्द्र जी को नवपल्लवित पौधे की रक्षा के लिए वहीं छोड़ गये।[1]

शांतिचन्द्र जी जगद्गुरू के विरह से खिन्न प्राणियों को अपने उपदेशामृत द्वारा सांत्वना देने लगे। और बादशाह से भी विद्वद्गोष्ठी करने लगे। एक किंवदन्ती है कि एक समय अकबर बादशाह और उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी परस्पर विनोद की बातें कर रहे थे उस वक्त अकबर ने कहा कि महाराज! कुछ चमत्कार तो दिखलाओ। उत्तर में उपाध्याय जी ने कहा कि चमत्कार देखना चाहते हैं तो मेरे साथ आपके बगीचे में चलिये। तुरन्त ही अकबर और उपाध्याय बगीचे में गये वहाँ पर उपाध्यायजी ने अकबर को उसके पिता हुमायूं आदि सात दाता-प्रदाताओं के दर्शन करवाये। अकबर बड़े आश्चर्य में पड़ गया और उसके हृदय में जैन धर्म के प्रति अटल श्रद्धा हो गई।

निःसन्देह शान्तिचन्द्र जी बड़े भारी विद्वान और एक साथ एक सौ आठ अवधान करने की अद्भुत शक्ति धारण करने वाले अप्रतिम प्रतिभावान थे। सूरिजी के विहार के बाद शान्तिचन्द्र जी निरन्तर बादशाह के पास जाने लगे। और विविध प्रकार का सदुपदेश देने लगे। बादशाह उनकी विद्वता से बड़ा खुश हुआ और उनपर अनुरक्त होता गया। बादशाह के सौहार्द एवं औदार्य से प्रसन्न होकर शान्तिचन्द्र जी ने अकबर की प्रशंसा में **कृपारस कोष** की रचना की। बादशाह ने जो दया के कार्य किये थे। इस कोष में उन्हीं का वर्णन है यह काव्य वे बादशाह को सुनाते थे। अकबर इस **कृपारस कोष** का श्रवण पानकर बहुत तृप्त हुआ इस ग्रन्थ के अन्त के 126-27 के पद्यों में स्पष्ट लिखा है– **बादशाह ने जो जज़ियाकर माफ किया, उद्धत मुगलों से जो मन्दिरों का छुटकारा हुआ, कैद में पड़े हुए कैदी जो बन्धन रहित हुए,**

---

1. जगद्गुरू हीर–मुमुक्षुभव्यानन्दजी पृष्ठ 92 पर

साधारण राजगण भी मुनियों का जो सत्कार करने लगा, साल भर में छः महीने तक जो जीवों को अभयदान मिला और विशेषकर गायें, भैसे, बैल और बकरी आदि जो पशु कसाई की प्राणनाशक कटार से निर्भय हुए इत्यादि शासन की उन्नति के जगत प्रसिद्ध जो-जो कार्य हुए उन सबका कारण यहीं ग्रन्थ (कृपारस कोष) है।[1]

बादशाह जब लाहौर में था तब शान्तिचन्द्र जी भी वहीं थे। **ईद** त्यौहार के एक दिन पहले वे बादशाह के पास गये और वहाँ से बिहार करने की इजाजत मांगी। बादशाह द्वारा कारण पूछे जाने पर शान्तिचन्द्र जी से कहा कि कल **ईद** के दिन लाखों जीवों का वध होगा जिसका क्रन्दन सुन नहीं सकूंगा, इसलिए मैं जाना चाहता हूँ। साथ ही अवसर का लाभ उठाते हुए शान्तिचन्द्र जी ने उसी समय बादशाह को कुरान शरीफ की कई आयतें ऐसी बताई जिनका अभिप्राय था कि हर जीव पर दया रखनी चाहिए।

शान्तिचन्द्र जी ने बताया की बकरीद तथा ऐसे ही अन्य प्रसंगों में प्राणियों की हिंसा करने खुदा के फरमान के बिल्कुल विपरीत है। कुरान शरीफ में ऐसा वर्णन है कि खुदा सभी जीवों का जन्मदाता है, जो जन्म देता है वह अपनी ही आशा से क्यों मरवायेगा? खुदा ने तो सब जीवों पर रहम रखने का फर्मान दिया है जैसा कि कुरान शरीफ के शुरू में ही कहा गया है कि **बिस्मिल्लाइर्रहमानुर्रहीम** जिसका तात्पर्य है कि सब जीवों पर रहम खो।

---

1. यज्जीजिआकर निवारणभेष चक्र
   या चैत्यपुक्तिपि दुर्दमदुग्लेभ्यः।
   यद्धन्दिबन्धन महाकुरूते कृपान्डणे।
   मत्सत्करोत्थवमराजगंणो यतीन्द्रान ।।26।।
   यज्जस्तुजातमभयं प्रतिभाषटक
   यच्चाजनिष्ट बिभवः सुरभीसमुहः।
   इत्यादिशासन समुन्नतिकारणेषु।
   ग्रन्थोऽयमेव भषति स्म परं निमित्रम् ।।27।।
   कृपारस कोष—उपाध्याय शान्तिचन्द्र जी श्लोकं 126-27

यदि जीवों की कुर्बानी होती तो धर्म स्थानों और तीर्थ स्थानों में क्यों उसकी मनाही की जाती? कुरान शरीफ में कहा गया हैं कि **मक्का में उसकी हद तक किसी को किसी जानवर को नहीं मारना चाहिए और अगर कोई भूल से मारे, तो उसके बदले में अपना पाला हुआ जानवर छोड़ना चाहिए, अथवा दो समझदार मनुष्य जो उसकी कीमत ठहरावें, उतनी कीमत का खाना गरीबों को खिलाया जाए।**

कुरान शरीफ में तो यहां तक कहा गया है कि मक्का शरीफ की यात्रा को जब से जाओ तब से जब तक वापिस न लौटो तब तक रोजा रखा। जानवरों को मारे मत और धर्म के जो खास-खास दिन गिनाये गये हैं उन दिनों मांस मत खाओ। यदि जीवों का संहार करने में धर्म होता तो धर्म ग्रन्थ कुर्बानी करने की क्यों मनाही करते?

कुरान शरीफ में स्पष्ट लिखा है कि **खुदा तक न गोश्त पहुँचता है और न खून बल्कि उस समय तक तुम्हारी परहेजगारी पहुँचती है**[1] **कुरान के सूर-ए-अनआम में लिखा है कि जमीन में जो चलने फिरने वाला (हैवान) या दो पैरो से उड़ने वाला जानवर है। उनकी भी तुम लोगों की तरह जमायतें है।**[2]

शान्तिचन्द्रजी ने बताया कि अंजाने में किसी जीव की हिंसा हो जाये तो ईश्वर मापकर देगा लेकिन जानबूझकर गलत काम करने वालों को कभी माफ नहीं किया जाता जैसा कि कुरान में भी लिखा है **खुदा उन्हीं लोगों की तौबा कबूल फरमाता है। जो नादानी से बुरी हरकत करता है। वह सब कुछ जानता है और हिकमत वाला है। ऐसे लोगों की तौबा कबूल नहीं होती। जो (सारी उम्र) बुरे काम करते हैं यहां तक कि जब उनमें से किसी की मौत आ मौजूद हो तो उस वक्त कहने लगे कि अब मैं तौबा कबूल करता हूँ।**[3]

ये प्रमाण हमें यही दिखला रहे हैं कि सब जीवों पर रहम दृष्टि रखो। किंवदन्ती है कि एक समय काबुल के अमीर हिन्दूस्तान की

---

1. कुरान-शरीफ—सूर-ए-अल-हज्ज आयत 37
2. वही सूर-ए-अनआम आयत 38
3. करान-शरीफ—सूर-ए-निशा आयत 17-18

यात्रा को आये। उस समय **ईद** का त्यौहार मनाने वे देहली पधारे। वहां के मुसलमानों ने उनके हाथ से कुर्बानी कराने के लिए कई गायें इकट्ठी की। मुसलमान समझते थे कि अमीर साहब हम पर प्रसन्न होंगे किन्तु अमीर साहब ने मुसलमानों की इस तैयारी को देखकर कहा कि कुरान में तो गायों की कुर्बानी की आज्ञा है ही नहीं। गौ-वध इस ख्याल से भी नहीं करना चाहिए क्योंकि हिन्दू हमारे पड़ोसी है और गौ-वध से उनके दिल में दुख होगा जबकि कुरान में स्पष्ट फर्मान है कि अपने पड़ोसियों के साथ हिल मिलकर रहो फिर मैं गौ-वध करके कुरान की आज्ञा का उल्लंघन क्यों करूं।

इसी तरह सुबूक्तगीन के स्वप्न की बात भी सर्वविदित है कि वह एक साधारण स्थिति का मुसलमान था, किन्तु था बड़ा दयालु। खुद दरित्र होते हुए भी किसी को दुखी देखकर उसकी सहायता करने को तैयार रहता था। एक दिन वह घोड़े पर चढ़कर जंगल में घूमने गया। वहां उसने एक हिरन के बच्चे को देखा तो उसे अपने घोड़े पर ले लिया। बच्चे की मां कुछ ही दूरी पर घास खा रही थी। जब उसने देखा कि मेरे बच्चे को एक आदमी लिये जा रहा है तो वह घोड़े के पीछे-पीछे चलने लगी। बच्चे के वियोग में उसका चेहरा उतर गया। सुबुक्तगीन को उसके दर्द का अहसास हुआ। उसने सोचा अगर यह हिरणी बोल सकती होती तो जरूर बच्चे को छोड़ने की प्रार्थना करती। मूक पशु के दर्द को समझते ही उसने बच्चे को धीरे से नीचे रख दिया। हिरणी बड़े आनन्द पूर्वक बच्चे को प्यार करने लगी इस दृश्य को देखकर सुबुक्तगीन को लगा कि यह हिरणी मुझे आशीर्वाद दे रही है।

इसी रात सुबुक्तगीन ने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में मानो हजरत मुहम्मद खुद उसके पास जाकर कह रहे हैं कि सुबुक्तगीन तूने आज हिरनी और उसके बच्चे पर जो दया दिखाई है इससे खुदा तेरे पर बहुत प्रसन्न हुए हैं, उनकी इच्छा से तू राजा होगा। और जब तू राजा हो तब भी तू दुखियों पर उसी प्रकार दया करना, वैसा करने में खुदा तेरे पर हमेशा खुश रहेंगे। सचमुच कुछ दिन के बाद सुबुक्तगीन राजा हुआ।

मुसलमानों में दया सम्बन्धित इतने प्रमाण मिलने के बावजूद भी क्या कारण है कि उनमें बकरे, भेड़िये एवं ऊंट वगैरह की कुर्बानी दी जाती है? आइये, जरा एक नजर इसकी मूल उत्पत्ति पर डालकर देखें तो हमें क्या रहस्य मालूम होता है—

इब्राहीम पैगम्बर जब ईमान में आये तब उनके ईमान की परीक्षा करने के लिए अल्लाहताला ने उनको कहां कि **तुम अपनी प्यारी से प्यारी चीज की कुर्बानी दो** तो इब्राहीम पैगम्बर ने अपने इकलौते पुत्र इस्माइल को मारने के लिये तैयार किया और अपनी आंखों पर पट्टी बांधकर छुरी से जैसे ही उसे मारने लगते हैं, वैसे ही अल्लाहताला की कुदरत से लड़के के स्थान पर एक भेड़ (दुम्बा) आकर खड़ा हो गया। यह कट गया और लड़का बच गया। बाद में अल्लाहताला ने उस दुम्बे को भी जिन्दा कर दिया।

इस कथा से हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इब्राहीम पैगम्बर ने अपने लड़के के बदले दुम्बे को मारा तो दुम्बे अथवा बकरे की बलि देना उचित है। कथा का आशय तो यह है कि अल्लाहताला ने इब्राहीम पैगम्बर की परीक्षा लेने के लिए इस प्रकार का प्रयत्न किया था। अब क्या अल्लाहताला ने हुक्म दिया है जैसा कि इब्राहीम पैगम्बर को दिया था? यदि ऐसा है तो इब्राहीम पैगम्बर की तरह ही अपने पुत्र की बलि देने को तैयार होना चाहिए बाद में अल्लाहताला की मरजी उस लड़के को हटाकर बकरा अथवा दुम्बा जो चीज रखने की होगी, रख लेंगे। शुरू में क्यों निर्दोष एवं मूक पशुओं को कुर्बानी के लिये तैयार कर दिया जाये।

यद्यपि हीरविजयसूरिजी से मिलने के बाद बादशाह इस बात से परिचित था कि जीव हिंसा से घोर पाप होता है। कुरान शरीफ में जीव हिंसा की आज्ञा नहीं है फिर भी शान्तिचन्द्र जी के उपदेश से बादशाह ने लाहौर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कल ईद के दिन कोई आदमी किसी जीव को न मारे। इस तरह बादशाह के इस फरमान से करोड़ों

जीवों के प्राण बच गये। भानुचन्द्रगणि रचित में जीव हिंसा निषेध के जो दिन गिनाये गये हैं उनमें भी ईद का दिन शामिल है।[1]

सूरिजी की तरह शांतिचन्द्रजी को भी बादशाह बहुत मानता था इसलिए उनके आग्रह से बादशाह ने एक ऐसा फरमान निकाला जिसकी रूह से, बादशाह का जन्म जिस महीने में हुआ था, उस सारे महीने में, रविवार के दिनों में, संक्रान्ति के दिनों में और नवरोज़ के दिनों में कोई भी व्यक्ति जीव हिंसा नहीं कर सकता था[2] हीरसौभाग्य काव्य में भी इन दिनों का वर्णन मिलता है।[3]

इस तरह सब मिलाकर एक वर्ष में छः महीने, छः दिन के लिए अकबर ने अपने सारे राज्य में जीव हिंसा नहीं होने के फरमान निकाले थे[4] इन फरमानों के अलावा जज़िया बन्द करने का फरमान भी लै लिया जगद्गुरु हीर में भी वर्णन मिलता है कि शान्तिचन्द्र जी के कथनानुसार जज़िया कर, मृत द्रव्य ग्रहण करना कतई बन्द कर दिया और अकबर गाय, भैंस, बकरा आदि पशुओं को कलाई की छुरी से बचाने के लिये साल भर में छः महीने तक सभी जीवों को अभय दान देकर अहिंसा का परम पुजारी बन गया।[5]

बादशाह के ये सब कार्य कर देने पर, सूरिजी को इनकी खुशखबर देने के लिये शान्तिचन्द्र जी ने अकबर से गुजरात जाने की इजाजत मांगी। इजाजत मिलने पर गुजरात की ओर विहार किया। पट्टन पहुंचकर गुरूजी के दर्शन करु उन्हें बादशाह के उन सब सुकृत्यों का हाल कह सुनाया और वे फरमान पत्र भी उनके चरणों में भेंट किये जिनमें **जजिया** कर के उठा देने का तथा वर्ष भर में छः महीने जितने दिनों तक जीव-वध के न किये जाने का हाल और हुक्म था। शान्तिचन्द्रजी के इन कार्यों से सूरिजी उन पर बहुत प्रसन्न हुए।

---

1. भानुचन्द्रगणिचरित भूमिका का लेखक— अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 8
2. सूरीश्वर सम्राट–कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 145
3. हीरसौभाग्य काव्य–देवविमलगणि सर्ग 14, श्लोक 273-274
4. सूरीश्वर सम्राट–कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 147
5. जगद्गुरू हीर–मुमुक्षुभव्यानन्द जी पृष्ठ 94.95

3. उपाध्याय भानुचन्द्र जी—

अकबर ने इबादतखाने में अपनी सभा के सदस्यों को पांच भागों में विभक्त किया था। पांचवें भाग के अन्तिम स्थान पर भानुचन्द्र नाम अंकित है। ये भानचन्द्र के नाम से जाना जाता है।[1]

भानुचन्द्र जी की प्रखर बुद्धि देखकर हीरविजयसूरिजी ने उन्हें अकबर के दरबार में भेजा उन्हें आशा थी कि ये अपनी बुद्धि के बलपर अकबर को प्रभावित करके जैन संघ को लाभ पहुंचायेंगे। सूरिजी की आज्ञा से भानुचन्द्र लाभपुर (लाहौर) गये। वहां के जैन ग्रहस्थों ने उनका बहुत आदर किया और उन्हें एक उपाश्रय[2] में ठहरा दिया। यहां से अकबर के मन्त्रि अबुलफजल ने भानुचन्द्र जी को अपने साथ राज दरबार में ले जाकर अकबर से भेंट कराई। भानुचन्द्र जी के बात-चीत करने के ढंग तथा बुद्धिमतापूर्ण उत्तरों से बादशाह बहुत प्रभावित हुआ। अकबर ने भानुचन्द्र जी से प्रतिदिन दरबार में आने की प्रार्थना की। बादशाह की प्रार्थना स्वीकार कर भानुचन्द्रजी प्रतिदिन दरबार में आने लगे वहां उन्हें उचित सम्मान दिया जाता था। बादशाह जब कभी आगरा या फतेहपुर छोड़कर जाता तो भानुचन्द्रजी को भी साथ ले जाता था। अकबर के समय में जो प्रतिष्ठा इन्होंने प्राप्त की वह जहांगीर के काल में भी निरन्तर बनी रही जिसका वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा।

क्रमशः

---

1. आइने अकबरी—एच. ब्लॉचमैन द्वारा अनुदित पृष्ठ 617
2. जैनों का उपासना करने का स्थान।

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

चंडसोम का पश्चाताप :

मुनिश्री के वचनों पर राजा पुरंदरदत्त मन ही मन मनन कर रहा था। समस्त उपस्थित जन मौन थे। इस सन्नाटे को तोड़ा मन्त्री वासव ने। वह अंजलिबद्ध होकर उठ खड़ा हुआ और विनम्र स्वर में पूछने लगा-

गुरुदेव! आपने आत्मा की दुर्गति और पठन का कारण क्रोध आदि कषायों को बताया, सो हे नाथ! इनका स्वरूप विस्तार पूर्वक समझाइये हम लोग इनसे बच सकें।

आचार्यश्री कहने लगे—

मन्त्री! कषायों में पहला क्रोध कषाय है। इसका स्वरूप सुनो। यह लोक और परलोक दोनों में ही दुःखदायी है। क्रोधी जीव अपना विवेक खो बैठता है। वह कार्य-अकार्य, उचित-अनुचित का भेद नहीं कर पाता, अकारण ही दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, उनके प्राणों का हनन करता है। उसे भक्ष्य-अभक्ष्य का भी ज्ञान नहीं रहता। अपने दुर्वचन रूपी तलवार से दूसरों का दिल काट देता है। मरकर दुर्गति को जाता है और इस जन्म में भी उसे सर्वत्र तुत्कार, धिक्कार, अपयश तथा तिरस्कार ही प्राप्त होता है। क्रोधी मनुष्य अपने ही सगे भाई-बहनों को भी मार डालता है।

अन्तिम शब्द राजा को अटपटे से लगे। क्रोधी दूसरों को मार डालता है; यहाँ तक तो ठीक है, समझ में आने वाली बात है, किन्तु अपने ही सगे भाई-बहनों की हत्या........? राजा ने पूछा—

मुनिवर! क्या ऐसा भी सम्भव है कि क्रोधी मनुष्य अपने ही परिवार के लोगों के प्राण हनन कर ले। ऐसा पुरुष कौन है?

दूर जाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी बायीं और बैठा हुआ श्यामवर्णी, रक्त नेत्र, भयंकर भृकुटी एवं मजबूत और कठोर अंगों वाला मनुष्य साक्षात् यमराज के समान क्रोध की प्रतिमूर्ति है। इसी ने ऐसा अनर्थ किया है।

राजा की दृष्टि अपनी बाई ओर घूम गई। उसने उस पुरुष को देखकर आचार्य महाराज से कहा--

गुरुदेव! इस मनुष्य का परिचय विस्तारपूर्वक बताइये। इसने क्रोध के वश में होकर क्या अनर्थ कर डाला?

मुनिश्री बताने लगे—

दमिलाण देश में कांची नाम की एक महानगरी है। उस नगरी की दक्षिण दिशा की ओर तीन गाँव दूर रगड़ नाम का एक सन्निवेश है। उस धन-धान्य-पूर्ण समृद्ध सन्निवेश में जन्म-दरिद्री, क्रोधी, क्लेश और संतापयुक्त जीवन बिताने वाला सुशर्मदेव नाम का ब्राह्मण रहता था। इसके बड़े पुत्र का नाम भद्रशर्मा, छोटे पुत्र का नाम सोमदेव और श्री सोमा नाम की एक पुत्री थी। भद्रशर्मा अपने पिता से भी बढ़कर क्रोधी था। वह निष्ठुर, कड़वे वचन बोलने वाला, हमेशा लड़ाई-झगड़े को तैयार रहता था। उसके इस दुर्गुण के कारण साथी बालकों ने उसका नाम ही बदल दिया। चंड प्रकृति के कारण सभी उसे चंडसोम कहने लगे। उसका यह नाम शीघ्र ही प्रसिद्ध भी हो गया।

माता-पिता ने योग्य गुण-शील वाली एक ब्राह्मण कन्या नंदिनी के साथ उसका विवाह कर दिया और अपनी प्रौढ़ावस्था जानकर तीर्थाटन को चल दिये।

घर का सारा भार चंडसोम पर आ पड़ा। दरिद्रता का अखंड साम्राज्य तो था ही उसके घर में—अपनी चण्ड प्रकृति के कारण वह कुछ विशेष धनोपार्जन भी नहीं कर पाता था। बड़ी कठिनाई से दो वक्त भोजन का गुजारा हो पाता।

नंदिनी का लावण्य इस दरिद्रता में भी विकसित था। यद्यपि उसे फटे-पुराने कपड़े ही पहनने को मिलते किन्तु उसकी सुन्दरता उनमें से भी झाँकती रहती। वह जिधर भी निकल जाती उसके रूप के चर्चे होने लगते। वैसे ही दरिद्रता अभिशाप होती है, इस पर नंदिनी का यह रूप। लोग ईर्ष्यावश नंदिनी की सुन्दरता का वर्णन चटखारे लेते हुए करते। चंडसोम भी सुनता तो जल कर रह जाता। वह कर भी क्या सकता था? किन्तु उसके हृदय में नंदिनी के चरित्र के प्रति शंका बैठ गई।

शरद ऋतु में एक बार सन्निवेश में नाटक मंडली आई। चंडसोम की इच्छा भी नाटक देखने की हुई किन्तु पत्नी की सुरक्षा का भार किस पर छोड़कर जाय। अर्धरात्रि तक तो नाटक चलेगा ही। एक बार सोचा कि इसे साथ ले जाऊँ किन्तु दूसरे क्षण ही विचार आया कि वहाँ तो सैकड़ों लोग होंगे, सभी की दृष्टि इस पर पड़ेगी। शंका के नाग ने अपना फन उठाया और उसने इस विचार को झटक दिया। फिर कुछ समय तक बैठा सोचता रहा। उसके मस्तिष्क में एक युक्ति आई। उसने नंदिनी को अपनी बहन श्रीसोमा के संरक्षण में छोड़ा और स्वयं शस्त्र हाथ लेकर नाटक देखने जा पहुँचा।

कुछ देर बाद श्री सोमा की इच्छा भी नाटक देखने की हुई। उसने नंदिनी से कहा—

नंदिनी! चलो हम भी नाटक देख आयें।

नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।

क्यों?

तुम अपने भाई के स्वभाव को तो जानती ही हो।

श्रीसोमा की इच्छा तो नाटक देखने की प्रबल थी। उसने कहा-

हम लोग नाटक समाप्त होने से पहले ही चले आएँगे, भाई को पता भी नहीं लगेगा।

नंदिनी ने प्रतिरोध किया—

नहीं, बहिन! पति की आज्ञा बिना पत्नी को कभी भी मेले तमाशे में नहीं जाना चाहिए और फिर पति से चोरी करके; यह तो सरासर विश्वासघात है। मैं ऐसा कभी नहीं कर सकती।

इस उत्तर को सुनकर श्रीसोमा उदास हो गई किन्तु तब तक छोटा भाई सोमदेव आ गया। श्रीसोमा की नाटक देखने की प्रबल इच्छा तो थी ही। उसने अपने भाई से इच्छा व्यक्ति की। भाई तैयार हो गया और दोनों भाई-बहन सोमदेव तथा श्रीसोमा नाटक देखने चले गए। नंदिनी ने दरवाजा अन्दर से बन्द किया और अपनी चारपाई पर ज़ा सोई।

चंडसोम बैठा नाटक देख रहा था। उसके पीछे ही एक युवक और युवती बैठे थे। युवक ने युवती से कहा—

प्रिये! मैं तुम्हारे विरह में व्याकुल हूँ। अब तक मैं स्वप्नों में ही तुम्हें देखता रहा। आज भाग्य से तुम मिली हो।

मैं भी तुमसे मिलने को व्याकुल थी किन्तु कभी मौका ही नहीं मिला।

आज तो मौका मिल गया, मेरी कामेच्छा पूरी कर दो।

युवती ने मुँह पर हाथ रखकर कहा—

शि:शि: ऐसी बात मत करो। नहीं जानते मेरा पति चण्ड (अत्यन्त क्रोधी) है, यदि मालूम पड़ गया तो कच्चा ही चबा जायेगा।

तुम्हारा पति चण्ड हो, सोम हो या रुद्र हो। मुझे उससे क्या मतलब? मेरे लिए तो तुम नन्दिनी हो, मेरे हृदय को सुख देने वाली। अपने शरीर संपर्क से मुझे तृप्त करो।

चंड और नन्दिनी नाम सुनकर चंडसोम चमक गया। एक बार तो उसके दिल में आया कि यही इन दोनों व्यभिचारियों का शस्त्र प्रहार से प्राणान्त कर दूँ। उसने चंड से अपना और नंदिनी से अपनी पत्नी का नाम समझा। लेकिन उसने सोचा अभी तो नंदिनी चुप है,

सुनें आगे क्या बात होती है। वह नाटक देखना तो भूल गया और उन युवक-युवतियों की बातें कान लगाकर सुनने लगा।

युवक ने कहा–

प्राणप्यारी! तुम चुप क्यों हो? यदि आज तुमने मेरी इच्छा पूरी नहीं की तो सुबह मुझे मरा पाओगी।

युवती सिहर उठी। उसने कातर स्वर में कहा–

ऐसा मत कहो। मैं तुम्हारी मृत्यु नहीं देख सकती।

तो मेरी इच्छा...........

अवश्य पूरी होगी। आज मेरा पति भी नाटक देखने आया है। तुम मेरे घर चलो।

युवक और युवती उठ गए। चंडसोम के हृदय में तो शंका पहले से ही थी अपनी पत्नी के चरित्र के प्रति, आज वह सच हो गई। उसे विश्वास हो गया कि मेरी पत्नी कुलटा है। क्रोध में उसी यह ध्यान भी न रहा कि मैं पत्नी को तो मैं अपनी बहन श्रीसोमा के संरक्षण में छोड़ आया हूँ। वह भी तुरन्त उठा और लम्बे डग भरता हुआ अपने घर की ओर चल दिया। घर के दरवाजे के पास ही आड़ में छिपकर खड़ा हो गया। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि आते ही दोनों पापियों का प्राणान्त कर दूँगा।

चंडसोम की क्रोधी प्रकृति से अनजान तो उसके भाई-बहन भी न थे। उन्होंने सोचा भाई से पहले ही घर पहुँच जाना चाहिए, अन्यथा व्यर्थ का क्लेश होगा। दोनों भाई-बहन सोमदेव और श्रीसोमा आधा नाटक छोड़कर ही अर्द्धरात्रि को चल दिये। ज्यों ही वे दरवाजे के पास पहुँचे, चंडसोम क्रोध में अंधा तो था ही कर दिया भरपूर प्रहार शस्त्र का, खच्च की ध्वनि हुई और जब तक सोमदेव कुछ समझ सके दूसरा प्रहार उसके कण्ठ पर हुआ। चोट सांघातिक थी। रक्त का फुहारा छूट पड़ा। तीसरा बार श्रीसोमा पर हुआ और वह भी कटे वृक्ष की भाँति गिर

पड़ी। शीघ्रता में शस्त्र दरवाजे से जा टकराया और जोर की ध्वनि हुई। उस आवाज से नंदिनी की नींद खुल गई। वह दीपक हाथ में लेकर आई तो द्वार खोलते ही यह वीभत्स दृश्य दिखाई पड़ा। सदा शान्त रहने वाली नंदिनी क्रोध से उबल पड़ी—

यह क्या किया, दुष्टात्मा! अपने ही सगे भाई-बहन को मार डाला?

चंडसोम भी विस्फारित नेत्रों से भाई-बहन को देख रहा था। उसके सिर से क्रोध भूत उतर चुका था। रक्त में सने दोनों शव सामने पड़े थे और चंडसोम पछता रहा था। अपने इस कुकृत्य पर उसे इतना दुःख हुआ कि मूर्छित होकर गिर गया। नंदिनी भी **हा बहन! हा देवल!** कहकर विलाप करने लगी। मूर्च्छा टूटने पर चंड सोम भी **हा भाई! हा बहन!** कहकर रुदन करने लगा।

रात्रि का अन्तिम प्रहर बीता, उषा की लालिमा फैलने लगी। लोग नाटक देखकर लौट रहे थे। चंडसोम के द्वार पर यह रुदन देखा तो उसके पास आ गये। पहले तो इस निद्य कर्म के लिए उन्होंने उसकी भर्त्सना की और फिर उसके शोक को देखकर द्रवित हो गए। कुछ समझदार व्यक्तियों ने कहा—

चंडसोम! मरने वाले तो मर गए, अब इनका अन्तिम संस्कार करो।

अन्तिम संस्कार के लिए चिता प्रज्वलित की गई। अपने भाई-बहन को अग्नि में भस्म होते देख, चंडसोम को बहुत दुःख हुआ। वह भी जलती चिता में कूद पड़ने के लिए लपका किन्तु लोगों ने पकड़ लिया। चंडसोम रो-रोकर कहने लगा—

मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने अपने ही भाई-बहन की अकारण हत्या कर दी। मुझे मर जाने दो। ऐसा पापी जीवन में नहीं जो सकता।

लोगों ने समझाया—

पाप का निवारण चिता में जल जाना ही नहीं है। इसके लिए शास्त्रों में प्रायश्चित भी बताए है। तुम प्रायश्चित करके शुद्ध हो जाओ।

चंडसोम को सांत्वना-सी मिली। उसने पूछा—

क्या यह संभव है? क्या मैं पाप-मुक्त हो सकता हूँ?

हाँ चंडसोम! प्रायश्चित से तो मनुष्य ब्रह्महत्या से भी छुटकारा पा जाता है। तुम भी यथोचित प्रायश्चित करो।

सांत्वना देकर लोग चंडसोम को शमशान से ले आए। अब उसे अपनी पाप-शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करना था।

मुफ्त के सलाहकार प्रायः सभी जगह मिल जाते हैं और वह भी एक नहीं अनेक। चंडसोम को भी प्रायश्चित की विधि सुझाने वाले उसकी पाप-शुद्धि की सलाह देने वाले अनेक व्यक्ति आ जुटे।

ग्राम पंडित ने कहा—

इच्छा बिना किया हुआ पाप, बिना प्रायश्चित के ही शुद्ध हो जाता है।

दूसरे पंडित ने बताया—

मारने वाले को यदि मार दिया जाय तो पाप नहीं लगता।

तीसरे ने राय दी—

चंडसोम पापी तुम नहीं, क्रोध है। क्रोध ने ही तुम्हारे भाई-बहन की हत्या की है।

चौथे ने दान की महिमा बताई—

संपत्ति दान से सारे पाप धुल जाते हैं।

पाँचवें ने तीर्थ यात्रा का महत्त्व समझाया—

हिमालय आदि स्थानों पर बने देव मन्दिरों की यात्रा को शास्त्रों में सर्वपाप-मोचनी कहा है।

क्रमशः

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:

Vol - 1	(satakas 1-2)	Price : Rs.	150.00
Vol - 2	(satakas 3-6)		150.00
Vol - 3	(satakas 7-8)		150.00
Vol - 4	(satakas 9-11)		150.00

2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates — Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism translated by Ganesh Lalwani. — Price : Rs. 15.00
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, — Price : Rs. 15.00
5. Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani — Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology — Price : Rs. 100.00
7. Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains — Price : Rs. 100.00
8. Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India — Price : Rs. 100.00
9. Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism — Price : Rs.
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within — Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira — Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity — Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira — Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

Our Quality Product of :

Anusandhan
Kolkata Nasta
Badsha Khan
Picnic
Raja
Shubham
Bhaonagari Ghantia
Jocker
Lajawab
Papri Ghantia
Rim Jhim
Tinku

MANUFACTURED BY

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

KOLKATA ADDRESS:

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3293-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9434060429, 9830423668

TITTHAYARA
Vol XXXV No 08
25th November 2011

Registered
No. KOL RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects . Interiors . Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700013
Phone No.-2227 5240/45, Fax :22276356
Email Id:info@nahardecor.com